□ डॉ सुरेश सिसोदिया

# जैन शास्त्रों में वर्णित शिक्षा - सूत्र

प्रत्येक धर्म परम्परा में धर्म ग्रन्थ का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। हिन्दुओं के लिए वेद, बौद्धों के लिए त्रिपिटक, पारसियों के लिए अवेस्ता, ईसाइयों के लिए बाईबिल और मुसलमानों के लिए कुरान का जो स्थान और महत्व है, वही स्थान और महत्व जैनों के लिए आगम-साहित्य का है। सम्पूर्ण जैन आगम-साहित्य में नैतिक शिक्षा से सम्बन्धित अनेक सूत्र दृष्टिगोचर होते है। अर्द्धमागधी आगम साहित्य में चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक का रचनाकाल ईस्वी सन् की पाँचवी शताब्दी से पूर्व का माना जाता है। चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक में सात द्वारों के माध्यम से सात गुणों का वर्णन किया गया है। ये सभी गुण वस्तुतः व्यक्ति के चरित्र-निर्माण और उसके अन्तिम लक्ष्य समाधिमरण पूर्वक देह-त्याग की प्राप्ति करने में सहायक हैं। चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक में वर्णित विषय-वस्तु के शिक्षा-सूत्र इस प्रकार हैं:-

१. **विनय गुण** :- विनय गुण नामक प्रथम द्वार में जो कुछ वर्णन प्राप्त होता है उससे स्पष्ट होता है कि किसी शिष्य की महानता उसके द्वारा अर्जित व्यापक ज्ञान पर निर्भर नहीं है वरन् उसकी विनयशीलता पर आधारित है। गुरूजनों का तिरस्कार करने वाले विनय रहित शिष्य के लिए तो कहा है कि वह लोक में कीर्ति और यश को प्राप्त नहीं करता है किन्तु जो विनयपूर्वक विद्या ग्रहण करता है उस शिष्य के लिए कहा है कि वह सर्वत्र विश्वास और कीर्ति प्राप्त करता है (२-६)।

विद्या और गुरू का तिरस्कार करने वाले जो व्यक्ति मिथ्यात्व से युक्त होकर लोकेषणा में फँसे रहते हैं ऐसे व्यक्तियों को ऋषिघातक तक कहा गया है (७-९)। विद्या को तो इस लोक में ही नहीं, परलोक में भी सुखप्रद बतलाया है (१२)।

विद्या प्रदाता आचार्य एवं शिष्य के विषय में कहा है कि जिस प्रकार समस्त प्रकार की विद्याओं के प्रदाता गुरू कठिनाई से प्राप्त होते हैं उसी प्रकार चारों कषायों तथा खेद से रहित सरलचित वाले शिक्षक एवं शिष्य भी मुश्किल से प्राप्त होते है (१४-२०)। यापनीय परम्परा के ग्रन्थ मूलाचार में भी विनय गुण को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि विनय से पढ़ा गया शास्त्र यद्यपि प्रमाद से विस्मृत भी हो जाता है तो भी वह परभव में उपलब्ध हो जाता है और केवलज्ञान को प्राप्त करा देता है।

२. **आचार्य गुण**:- विनय गुण के पश्चात् आचार्य गुण की चर्चा करते हुए कहा गया है कि पृथ्वी के समान सहनशील, पर्वत ती तरह अकम्पित, धर्म में स्थित चन्द्रमा की तरह सौम्यकांति वाले, समुद्र के समान गम्भीर तथा देश काल के जानकर आचार्यों की सर्वत्र प्रशंसा होती है (२१-३१)।

आचार्यों की महानता के विषय में कहा गया है कि आचार्यों की भक्ति से जहाँ जीव इस लोक में कीर्ति और यश प्राप्त करता है वहीं परलोक में विशुद्ध देवयोनि और धर्म में सर्वश्रेष्ठ बोधि को प्राप्त करता है (३२)। आगे कहा गया है कि इस लोक के जीव तो क्या देवलोक में स्थित देवता भी अपने आसन शय्या आदि का त्याग कर अप्सरा समूह के साथ आचार्यों की वन्दना के लिए जाते हैं (३३-३४)।

त्याग और तपस्या से भी महत्त्वपूर्ण गुरूवचन का पालन मानते हुए कहा गया है कि अनेक उपवास करते हुए भी जो गुरू के वचनों का पालन नहीं करता वह अनन्तसंसारी होता है। (३५)।

३. **शिष्य गुण**:- आचार्य गुण के पश्चात् इस प्रकीर्णक ग्रन्थ में शिष्य गुण का उल्लेख हुआ है जिसमें कहा गया है कि नाना प्रकार से परिषहों को सहन करने वाले, लाभ-हानि में सुख-दुख रहित रहने वाले, अल्प इच्छा में संतुष्ट रहने वाले,



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋद्धि के अभिमान से रहित, सभी प्रकार की सेवा-सुश्रुषा में सहज, आचार्य की प्रशंसा करने वाले तथा संघ की सेवा करने वाले एवं ऐसे ही विविध गुणों से सम्पन्न शिष्य की कुशलजन प्रशंसा करते है (३७-४२)।

आगे कहा गया है कि समस्त अहंकारों को नष्ट करके जो शिष्य शिक्षित होता है, उसके बहुत से शिष्य होते हैं किन्तु कुशिष्य के कोई भी शिष्य नहीं होता (४३)। शिक्षा किसे दी जाए, इस सम्बन्ध में कहा गया है कि किसी शिष्य में सैकड़ों दूसरे गुण भले ही क्यों न हों किन्तु यदि उसमें विनय गुण नहीं है तो ऐसे पुत्र को भी वाचना न दी जाए। फिर गुण विहीन शिष्य को तो क्या? अर्थात् उसे तो वाचना दी ही नहीं जा सकती (४४-५१)।

४. **विनय-निग्रह गुण** :- प्रस्तुत कृति में विनय गुण और विनय-निग्रह गुण इस प्रकार दो स्वतन्त्र द्वार हैं किन्तु विनय गुण और विनय-निग्रह गुण में क्या अंतर है, यह इसकी विषयवस्तु से स्पष्ट नहीं होता, क्योंकि दोनों ही द्वारों की गाथाओं में जो विवरण दिया गया है उसका तात्पर्य विनम्रता या आज्ञापालन से ही है। यद्यपि प्राचीन आगम ग्रन्थों में विनय शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है – एक विनम्रता के अर्थ में और दूसरा आचार के नियमों के अर्थ में। प्राय: सभी प्रसंगों में विनय का तात्पर्य आचार-निमय ही प्रतिफलित होता है अत: यह कहा जा सकता है कि विनय-निग्रह गुण से लेखक का तात्पर्य आगमोक्त आचार नियमों के परिपालन से रहा होगा।

विनय-निग्रह नामक इस परिच्छेद में विनय को मोक्ष का द्वार कहा गया है और इसलिए सदैव विनय का पालन करने की प्रेरणा दी गई है तथा कहा गया है कि शास्त्रों का थोड़ा जानकार पुरुष भी विनय से कर्मों का क्षय करता है (५४)। आगे कहा गया है कि सभी कर्मभूमियों में अनन्त ज्ञानी जिनेन्द्र देवों के द्वारा भी सर्वप्रथम विनय गुण को प्रतिपादित किया गया है तथा इसे मोक्षमार्ग में ले जाने वाला शाश्वत गुण कहा है। मनुष्यों के सम्पूर्ण सदाचरण का सारतत्व भी विनय में ही प्रतिष्ठित होना बतलाया है। इतना ही नहीं, आगे कहा है कि विनय रहित तो निर्ग्रन्थ साधु भी प्रशंसित नहीं होते (६१-६३)।

५. **ज्ञान गुण** : ज्ञान गुण नामक पाँचवें द्वार में ज्ञान गुण का वर्णन करते हुए कहा है कि वे पुरुष धन्य हैं, जो जिनेन्द्र भगवान् द्वारा उपदिष्ट अति विस्तृत ज्ञान को समग्रतया नहीं जानते हुए भी चारित्र सम्पन्न हैं (६९)। ज्ञात दोषों का परित्याग और गुणों का परिपालन, ये ही धर्म के साधन कहे गये हैं (७२)। आगे कहा गया है कि जो ज्ञान है वही क्रिया का आचरण है, जो आचरण है वही प्रवचन अर्थात् जिनोपदेश का सार है और जो प्रवचन का सार है, वही परमतत्त्व है (७७)।

ज्ञान की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि इस लोक में अत्यधिक सुन्दर व विलक्षण होने से क्या लाभ? क्योंकि लोक में तो चन्द्रमा की तरह लोग विद्वान के मुख को ही देखते हैं (८१)। आगे कहा है कि ज्ञान ही मुक्ति का साधन है, क्योंकि ज्ञानी व्यक्ति संसार में परिभ्रमण नहीं करता है (८३-८४)। अन्त में साधक के लिए कहा गया है कि जिस एक पद के द्वारा व्यक्ति वीतराग के मार्ग में प्रवृत्ति करता है, मृत्यु समय में भी उसे छोड़ना नहीं चाहिए (९४-९७)।

६. **चारित्र गुण** : – चारित्र गुण नामक छठे द्वार में उन पुरुषों को प्रशंसनीय बतलाया गया है, जो गृहस्थरूपी बन्धन से पूर्णत: मुक्त होकर जिनेन्द्र भगवान् द्वारा उपदिष्ट मुनि-धर्म के आचरण हेतु प्रवृत्त होते हैं (१००)। पुन: दृढ़ धैर्य मनुष्यों के विषय में कहा गया है कि जो उद्यमी पुरुष क्रोध, मान, माया, लोभ, अरति और जुगुप्सा को समाप्त कर देते हैं, वे परम सुख को खोज पाते हैं (१०४)। चारित्रशुद्धि के विषय में कहा गया है कि पाँच समिति और तीन गुप्तियों में जिसकी निरन्तर मति है तथा जो राग-द्वेष नहीं करता है, उसी का चारित्र शुद्ध होता है (११४)।

७. **मरण गुण** :– विनय गुण, आचार्य गुण, शिष्य गुण, विनय-निग्रह गुण, ज्ञान गुण और चारित्र गुण का वर्णन करने के पश्चात् अन्त में ग्रन्थकार मरण गुण का प्रतिपादन करते हुए समाधिमरण की उत्कृष्टता का बोध कराते हैं। वे कहते हैं कि विषय-सुखों का निवारण करने वाली पुरूषार्थी आत्मा मृत्यु समय में समाधिमरण की गवेषणा करने वाली होती है (१२०)। आगे कहा गया है कि आगम ज्ञान से युक्त किन्तु रसलोलुप साधुओं में कुछ ही समाधिमरण प्राप्त कर पाते हैं किन्तु अधिकांश का समाधिमरण नहीं होता है (१२३)।

समाधिमरण किसका होता है? इस विषय में कहा गया है कि सम्यक् बुद्धि को प्राप्त, अन्तिम समय में साधना में विद्यमान, पाप कर्म की आलोचना, निन्दा और गर्हा करने वाले व्यक्ति का मरण ही शुद्ध होता है अर्थात् उसका ही समाधिमरण होता है (१३१)। साथ ही यहाँ मृत्यु के अवसर पर कृतयोग वाला कौन होता है इस पर भी चर्चा की गई है (१३३-१४०)।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कषायों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि जिस मनुष्य ने करोड़ पूर्व वर्ष से कुछ कम वर्ष तक चारित्र का पालन किया हो, ऐसे दीर्घ संयमी व्यक्ति के चारित्र को भी कषाय क्षण भर में नष्ट कर देते है (१४३-१४४)।

साधुचर्या का वर्णन करते हुए कहा है कि वे साधु धन्य हैं, जो सदैव राग रहित, जिन-वचनों में लीन तथा निवृत कषाय वाले हैं एवं आसक्ति और ममता रहित होकर अप्रतिबद्ध विहार करने वाले, निरन्तर सद्गुणों में रमण करने वाले तथा मोक्षमार्ग में लीन रहने वाले है (१४७-१४८)।

बुद्धिमान पुरुष के लिए कहा गया है कि वह गुरू के समक्ष सर्वप्रथम अपनी आलोचना और आत्मनिंदा करे, तत्पश्चात् गुरू जो प्रायश्चित् दे, उसकी स्वीकृति रूप **''इच्छामि खमासमणो''** के पाठ से गुरू को वन्दना करे और गुरू को कहे कि – आपने मुझे निस्तारित किया (१५१-१५२)।

आगे की गाथाओं में समाधिमरण का उल्लेख करते हुए आसक्ति-त्याग पर बल दिया गया है। वस्तुत: आसक्ति ही वह कारण है जो व्यक्ति को बन्धन में डालती है। जिसके कारण व्यक्ति सांसारिक मोह-माया में फँसता जाता है परिणामस्वरूप उसके कर्म बन्धन दृढ़ होते जाते हैं। यह मानव स्वभाव है कि व्यक्ति सांसारिक वस्तुओं यथा- सोना-चाँदी, दास-दासी आदि भौतिक सम्पदाओं तथा स्वजन-परजन आदि के प्रति अपना ममत्व भाव रखता है और इन हेय पदार्थों को उपादेय मान लेता है, परिणामस्वरूप वह जन्म-मरण के भव-चक्र में पड़ जाता है किन्तु मनुष्य की मृत्यु के समय में न तो परिजन सहायक होते हैं और न ही नाना प्रकार की भौतिक सम्पदा ही उसकी सहायता कर पाती है। सम्भवत: यही कारण है कि प्रत्येक मतावलम्बी अपने जीवन के अन्तिम क्षण में समस्त प्रकार के क्लेषों से मुक्त होकर तथा राग-द्वेष को छोड़कर भगवान् जिनदेव से प्रार्थना करता है कि हे भगवन्। मैं समाधिमरण के पथ पर चलना चाहता हूँ, इस दिशा में मेरा मार्गदर्शन करो तथा मुझे इतनी शक्ति प्रदान करो कि मैं आसक्ति के सारे बन्धनों को काटकर बोधि प्राप्त कर सकूँ और मानव जीवन पाने का यथार्थ लाभ प्राप्त कर सकूँ।

समाधिमरण लेने वाले की तुलना एक कुशल व्यापारी से की जा सकती है। सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात का व्यापार करने वाले व्यापारी को यह कभी इष्ट नहीं होगा कि उसके सामान को किसी प्रकार से नुकसान पहुँचे। कदाचित परिस्थितिवश उसके सामान को नुकसान पहुँचने लगता है तो पहले तो वह अपने सारे सामान को बचाने का प्रयास करता है किन्तु जब ऐसा कर पाना उसके लिए सहज नहीं रहता है तो वह बहुमूल्य वस्तुओं को नष्ट होने से बचाता है और अल्प-मूल्य वाली वस्तुओं को नष्ट होने देता है।

समाधिमरण का व्रत लेने वाला साधक ही ठीक उसी व्यापारी की तरह शरीर एवं उसमें उपस्थित सद्गुणों की रक्षा करता है। शरीर भी एक प्रकार से सांसारिक वस्तु ही है और सामान्यतया प्रत्येक प्राणी को सबसे अधिक आसक्ति अपने शरीर से ही होती है। बीमारी हो जाने की अवस्था में भी वह शरीर की रक्षा का भरसक प्रयास करता है किन्तु जब उसे यह ज्ञात हो जाता है कि वह अपने शरीर की रक्षा नहीं कर पाएगा तो वह शरीर के प्रति अपनी आसक्ति का त्याग करके उसमें रहने वाले सद्गुणों की ही रक्षा करता है। यहाँ यह कथन करने का हमारा अभिप्राय मात्र यह है कि समाधिमरण के इच्छुक व्यक्ति सांसारिक वस्तुओं के प्रति मोह का भी त्याग कर देते हैं। उनके लिए संसार के समस्त वैभव, सुख-दु:ख, भोग-विलास, सोना-चाँदी, दास-दासी, बन्धु-बान्धव आदि सभी कुछ आत्म-समाधि की अपेक्षा तुच्छ हैं।

ग्रन्थ का समापन यह कहकर किया गया है कि विनय गुण, आचार्य गुण, शिष्य गुण, विनय निग्रह गुण, ज्ञान गुण, चारित्र गुण और मरण गुण विधि को सुनकर उन्हें उसी प्रकार धारण करें, जिस प्रकार वे शास्त्र में प्रतिपादित हैं। इस प्रकार की साधना से गर्भवास में निवास करने वाले जीवों के जन्ममरण, पुनर्भव, दुर्गति और संसार में गमनागमन समाप्त हो जाते हैं (१७४-१७५)।

विषय-वस्तु की दृष्टि से चन्द्रवैध्यक प्रकीर्णक एक अध्यात्म-साधना परक प्रकीर्णक है। इसमें मुख्य रूप से गुरू-शिष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का एवं शिष्यों को वैराग्य की दिशा में प्रेरित करने वाले शिक्षा-सूत्रों का संकलन है, जो इस ग्रन्थ की आध्यात्मिक महत्ता को ही स्पष्ट करता है। सुधिजन इन शिक्षा-सूत्रों का अध्ययन कर अपने जीवन् को उन्नत-समुन्नत बनाये, यही अपेक्षा है। ■



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org